Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

18

खड़िया आदिवासी समाज का सांस्कृतिक व्याकरण: 'सोरेङ खोडी' उपन्यास के संदर्भ में

डॉ. नवनाथ भोंदे
पेमराज सारडा महाविद्यालय, अहिल्यानगर (महाराष्ट्र)

अनिल वीरेंद्र कुल्लू द्वारा रचित 'सोरेङ खोडी' खड़िया भाषा का प्रथम उपन्यास होने के कारण न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, सांस्कृतिक संरचना और सामाजिक ताने-बाने को विश्वसनीय रूप से अभिव्यक्त करने वाला एक दस्तावेज भी है। मूलतः खड़िया भाषा में रचित और लेखक द्वारा स्वयं हिंदी में अनूदित यह कृति (सत्यभारती प्रकाशन, रांची, 2007) आदिवासी जीवन-यथार्थ को भीतर से समझने का अवसर प्रदान करती है। उपन्यास का प्रमुख केंद्र है वीरू परगना के अंतर्गत स्थित'सोरेङ टोली—एक ऐसा सामुदायिक ग्राम, जिसकी संरचना, जनजातीय विविधता और पारस्परिक संबंध पूरी कथा की आत्मा हैं।

सोरेङ टोली प्रकृति की गोद में बसा एक छोटा-सा ग्राम है, जहाँ लगभग दस से बारह परिवार निवास करते हैं। यह स्थान प्राकृतिक शांति, हरियाली और जैविक जीवन-शैली से परिपूर्ण है। प्रकृति से जुड़ा हुआ यह परिवेश केवल भौगोलिक पृष्ठभूमि का निर्माण ही नहीं करता, बल्कि आदिवासी समुदाय के भावविश्व, चिंतन, जीवन-सरणी और सामूहिकता की अनुभूति को भी गहराई देता है। प्रकृति और मनुष्य का यह अविभाज्य संबंध उपन्यास के समाज-चित्रण का मूल आधार है।

सोरेङ टोली में विविध जनजातियों—खड़िया, मुण्डा, उरांव, हो, महरा, लोहरा—का सामूहिक निवास आदिवासी समाज की सहजीवन-दृष्टि का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। विभिन्न जातीय समूहों के एक साथ रहने से यहाँ की सामाजिक संरचना बहुलतावादी तथा सामुदायिक सहभागिता के आदर्श पर आधारित प्रतीत होती है। भिन्न-भिन्न जनजातियों के रहते हुए भी इनके बीच किसी प्रकार की सामाजिक दूरी या वर्चस्ववादी तनाव दिखाई नहीं देता; इसके स्थान पर सहयोग, साझेदारी और साझा सांस्कृतिक जीवन प्रमुखता से उभरता है।

सोरेङ टोली के सामाजिक जीवन का सबसे सशक्त प्रतिनिधित्व टेना और राहिल के परिवार के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। यह परिवार आदिवासी परिवार-व्यवस्था की उस विशिष्ट संरचना को दर्शाता है, जहाँ—परिवार का आकार बड़ा होता है| विभिन्न आयु वर्ग के सदस्य अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करते हैं| आजीविका के विविध स्रोतों का सहअस्तित्व मिलता है| साथ ही आत्मनिर्भरता और दायित्व-बोध सामुदायिक मूल्य के रूप में स्थापित है| टेना-राहिल के पाँच पुत्र—कोंडेङ, लोंगोय, हाबिल, सिलिम, फिलिप—और एकमात्र पुत्री रायेम, समाज में व्यावसायिक विविधता और प्रव्रजन की बदलती प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी का असम के चाय बागान में कार्यरत होना, किसी का पंजाब या राउरकेला स्थित फैक्टरी में नौकरी करना तथा किसी का उच्च शिक्षा हेतु रांची और सिमडेगा जाना—ये सभी उदाहरण आदिवासी समाज के भीतर आर्थिक परिवर्तन, आधुनिकता के प्रभाव और नई आर्थिक संभावनाओं की ओर संकेत करते हैं। यह परिवार न केवल प्रेम, शांति और नैतिक संबंधों का प्रतीक है, बल्कि आदिवासी जीवन के उस सामूहिक भाव को भी दर्शाता है जिसे 'सामुदायिकता'कहा जाता है।

सोरेङ टोली की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से एक है—धार्मिक विविधता का सौहार्दपूर्ण सह-अस्तित्व। इस टोली में आधे ईसाई हैं तो आधे सरना। सभी एक-दूसरे के पर्व में सहभागी होते हैं। साथ-साथ नाचते-गाते और आनन्द मनाते हैं। खुशी के क्षणों में कौन ईसाई है कि कौन सरना।[1] यह द्वैध धार्मिक संरचना सामाजिक विभाजन का कारण नहीं बनती। उलटे, दोनों समुदाय एक-दूसरे के पर्वों, नृत्य-गीतों, अनुष्ठानों और उत्सवों में बराबरी से सहभागी होते हैं। उपन्यास में उल्लिखित यह स्थिति स्पष्ट करती है कि आदिवासी समाज में धार्मिक पहचान से अधिक महत्त्व सामुदायिक सहभागिता, सांस्कृतिक निरंतरता और आपसी सहयोग को दिया जाता है। खुशी, दुख, उत्सव, श्रम और अनुष्ठानों के क्षणों में उनके बीच यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं होता कि कौन किस धर्म का है; बल्कि सामूहिक जीवन-पद्धति ही उनके संबंधों की दिशा तय करती है। शोध की दृष्टि से यह तथ्य उल्लेखनीय है कि आदिवासी समाज में पारंपरिक धर्मांतरण के बावजूद सामाजिक संरचना में विभाजन के चिह्न अपेक्षाकृत कम दिखाई देते हैं।

सोरेङ खोडी के जिस ग्रामीण परिदृश्य को उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है, वह एक ओर जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य, सांस्कृतिक सहअस्तित्व और सामुदायिक सहयोग की विशेषताओं से परिपूर्ण है, वहीं दूसरी ओर वह अनेक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक चुनौतियों से भी ग्रस्त दिखाई देता है, जो भारतीय आदिवासी क्षेत्रों की सामान्य समस्याओं से मेल खाती हैं। इन समस्याओं के केंद्र में—पलायन, शोषण, अंधविश्वास, तथा नशाखोरी—जैसी स्थितियाँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं। उपन्यास इन चुनौतियों को न केवल उजागर करता है बल्कि इनके पीछे सक्रिय सामाजिक-आर्थिक कारणों की ओर भी संकेत करता है।

सोरेङ टोली भी अनेक आदिवासी क्षेत्रों की भाँति आर्थिक अभाव और सीमित आजीविका-संसाधनों से जूझता हुआ क्षेत्र है। कृषि, जंगल आधारित गतिविधियाँ और स्थानीय श्रम-कार्य के अभाव के कारण यहाँ के लोगों को दूर-दराज के राज्यों—विशेषकर असम—की ओर पलायन के लिए विवश होना पड़ता है। यह पलायन केवल आर्थिक आवश्यकता का परिणाम नहीं, बल्कि असंगठित श्रम-बाजार में उपलब्ध शोषणकारी अवसरों का दुष्परिणाम भी है।

©Copyright 2025 *ADRJ*. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

असम के चाय-बागानों में कार्यरत आदिवासी श्रमिकों का चित्रण उपन्यासकार अत्यन्त मार्मिक रूप में करते हैं। लेखक के अनुसार वहाँ— “लोग आदिवासियों से अनुचित लाभ उठाने को नहीं हिचकते। उन्हें कुछ-कुछ खिला-पिलाकर खुश कर देना और बेघर-बार कर देने की स्वतःस्फूर्त प्रथा अब भी बरकरार है।”[2] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि प्रव्रजन केवल भूगोल का नहीं, बल्कि शोषण, दासता और सामाजिक असुरक्षा का भी अनुभव बन जाता है। आदिवासी श्रमिक अपनी असहायता, आर्थिक दुर्बलता और अशिक्षा के कारण शोषण के शिकार बनते हैं। पलायन की यह प्रक्रिया समाज की एक बड़ी संरचनात्मक समस्या को उजागर करती है, जहाँ स्थानीय विकास की कमी समुदाय को बाहरी अर्थव्यवस्थाओं के हाथों सौंप देती है।

उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक पक्ष अंधविश्वास की गहरी जड़ें हैं, जो आदिवासी समाज के भीतर अब भी सक्रिय हैं और आधुनिक शिक्षा के अभाव में निरंतर प्रबल होती जा रही हैं। यह अंधविश्वास अक्सर महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के रूप में सामने आता है, जिसे ‘डायन प्रथा’ जैसे अमानवीय रूपों में देखा जाता है। टेना की विधवा बहन कनैली को फारेन की मृत्यु के लिए दोषी ठहराया जाना और पंचायत द्वारा उसे जूते-चप्पलों की माला पहनाकर गाँव में घुमाने की क्रूर सजा देना—आदिवासी समाज की उस विडंबना को उजागर करता है जहाँ स्त्री की सामाजिक स्थिति कमज़ोर और आरोपों का बोझ अत्यधिक है। यह घटना न केवल अंधविश्वास का उदाहरण है, बल्कि सामुदायिक निर्णय-प्रक्रिया की रूढ़ियों और स्त्री-विरोधी हिंसा को भी उजागर करती है। कथा का सामाजिक संदेश तब दृढ़ बनता है जब वास्तविकता सामने आती है—फारेन द्वारा छोड़ी गई चिट्ठी में स्पष्ट लिखा होता है कि उसने स्वयं जहर पीने का निर्णय लिया था। यह तथ्य लेखक के उस विश्वास को पुष्ट करता है कि—“गाँव के अंधविश्वास को शिक्षा ही दूर कर सकती है| काश! समाज में यह अंधविश्वासी नासूर न होता| पर हाँ! एक दिन इन बुराईयों का अंत जरूर होगा किंतु हमें धैर्य रखने की जरुरत है|”[3] उपन्यासकार का यह मत आदिवासी सामाजिक सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण विचारधारा को जन्म देता है।

अंधविश्वास की भाँति मद्यपान और नशाखोरी भी आदिवासी समाज की एक गहरी सामाजिक समस्या के रूप में उभरती है। उपन्यास में विजय और मंजू का परिवार इस लत का दुष्परिणाम भोगता है। उपन्यासकार इसे एक व्यापक सामाजिक संकट के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और पारिवारिक स्थिरता पर गंभीर प्रभाव डालता है। इन सभी अंतर्विरोधों से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदिवासी समाज के समग्र विकास के लिए शिक्षा, स्थानीय आजीविका संसाधनों का विस्तार, सामाजिक सुधार और वैज्ञानिक चेतना का विकास अनिवार्य है। उपन्यासकार का दृष्टिकोण इन समस्याओं को केवल चित्रित करने तक सीमित नहीं, बल्कि उनके समाधान की दिशा में भी सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करता है।

उपन्यासकार ने खड़िया आदिवासी समाज के पारिवारिक मूल्यों को अत्यंत संवेदनशीलता और यथार्थपरकता के साथ चित्रित किया है। परिवार-व्यवस्था प्रेम, सहयोग और सामूहिकता की गहरी नींव पर आधारित है। उपन्यासकार ने टेना और राहिल के परिवार को उपन्यास का केंद्र बनाकर प्रस्तुत किया है। यह परिवार आदिवासी समाज में पारिवारिक संरचना के उन मूल्यों को दर्शाता है, जिनमें—प्रेम, सामूहिकता, भावनात्मक उत्कटता और सहजीवन—मुख्य तत्व हैं। टेना और राहिल का परिवार लेखक की दृष्टि में ‘पाँच बेटों और एक बेटी से सजी फुलवारी’ है। यह रूपक आदिवासी परिवारों की उर्वरता, समृद्धि और जीवन-ऊर्जा का प्रतीक है। इस परिवार में सभी सदस्य—एक-दूसरे का सम्मान करते हैं, भावनात्मक रूप से जुड़े हुए हैं तथा सामूहिक श्रम और सहयोग को जीवन-मूल्य के रूप में अपनाते हैं| घरेलू वातावरण का ‘प्रेम एवं शांति से परिपूर्ण स्वर्गीय अनुभूति’ के रूप में वर्णन उपन्यास की भावनात्मक संरचना को मजबूत करता है।

असम और पंजाब में मजदूरी करने गए पुत्रों का घर लौटना पूरे परिवार के लिए उत्सव के समान घटना है। इससे स्पष्ट होता है कि—आर्थिक आवश्यकताओं के कारण भले ही प्रव्रजन आवश्यक हो, किंतु परिवार की भावनात्मक एकता और आत्मीयता उसमें कहीं नहीं टूटती। इन क्षणों में घर ‘खुशी, उल्लास और पुनर्मिलन’ का प्रतीक बन जाता है। इतना ही नहीं फिलिप का रांची में रहते हुए बीमार होने पर भी माँ राहिल के जन्मदिवस पर घर आने का प्रसंग, आदिवासी परिवारों में मातृ-भक्ति, आत्मीयता और भावनात्मक निष्ठा का सशक्त उदाहरण है। यह आदिवासी जीवन की संवेदनशील और मानवीय पक्ष को उजागर करता है।

आदिवासी समाज में पंचायत, सामुदायिक निर्णय-प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। आदिवासी समाज में पंचायत का महत्त्व किसी औपचारिक प्रशासनिक इकाई से कहीं अधिक है; यह परंपरा, न्याय और सामुदायिक अनुशासन का आधार है। खड़िया समाज में पंचायत सामाजिक जीवन की लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाओं पर निर्णय लेने वाली संस्था है। लेखक ने इसका चित्रण अत्यंत विश्वसनीय ढंग से किया है। फारेन की मृत्यु के समय पंचायत का बैठना यह दर्शाता है कि मृत्यु जैसे संवेदनशील विषयों पर भी समुदाय सामूहिक विचार-विमर्श की परंपरा का पालन करता है। यहाँ पंचायत कनैली को ‘डायन’ घोषित कर दंड देने का निर्णय लेती है। हालाँकि बाद में सच्चाई सामने आने पर अंधविश्वास के विरुद्ध एक नैतिक संदेश भी निहित हो जाता है। डेले और खेंदारी का बैल मर जाने पर पंचायत द्वारा पूरे गाँव को उनकी सहायता करने का निर्णय लेना, पंचायत के सकारात्मक पक्ष को उजागर करता है। यह उदाहरण दर्शाता है कि—पंचायत केवल दंडात्मक निर्णय ही नहीं देती, बल्कि सहयोग, सहानुभूति और सामुदायिक उत्तरदायित्व को भी बढ़ावा देती है।

आर्थिक प्रणाली की दृष्टि से ‘सोरेङ खोड़ी’ उपन्यास में खड़िया आदिवासी समाज का जीवन मुख्यतः कृषि और वनोपज पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में उभरता है। खड़िया समाज में खेती को आजीविका का सबसे महत्वपूर्ण और परंपरागत आधार माना

©Copyright 2025 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

गया है। कृषि कार्य सामुदायिक सहयोग के सिद्धांत पर टिका है, "सभी एक-दूसरे की मदद किया करते हैं। जैसे- हल चलाना, धान बोना, छत्त छारना, पुआल चढ़ाना, खेत बनाना आदि काम में सभी हाथ बँटाया करते|"[4] इस प्रकार की सहभागी कृषि-व्यवस्था न केवल उनके आर्थिक जीवन को सुचारु बनाती है, बल्कि सामाजिक एकता, परस्पर निर्भरता और समुदाय-भाव को भी सुदृढ़ करती है।

कृषि कार्य के बावजूद, आर्थिक अस्थिरता और सीमित संसाधनों के कारण उपन्यास में खड़िया परिवारों को मजदूरी और पलायन के विकल्प की ओर भी जाते हुए दिखाया गया है। जीवन-यापन के लिए इस टोली के लोग असम और पंजाब जैसे दूरस्थ राज्यों में ऋतुचर या स्थायी श्रमिकों के रूप में पलायन करते हैं। टेना के पाँच संतानों में से दो—कोंडेङ (असम के चाय बागान में मजदूर) और लोंगोय (पंजाब में मजदूर)—गाँव से बाहर रहकर श्रम-आधारित जीवन यापन करने पर विवश हैं। कोंडेङ का अनुभव केवल व्यक्तिगत पीड़ा न होकर व्यापक आदिवासी प्रवासन-संकट की सामूहिक वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करता है, जब वह बताता है— "वहाँ के मजदूरों में झारखण्ड के आदिवासियों की संख्या अधिक है—उराँव, मुण्डा और खड़िया ही ज्यादा मिलते हैं| कुछ वहीं जाकर बस गये हैं।"[5] यह साक्ष्य स्पष्ट करता है कि मजदूरी उनकी मजबूरी होने के साथ-साथ बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का प्रतीक भी है, जिसमें आत्मनिर्भर कृषि-जीवन धीरे-धीरे मजदूरी-आधारित श्रम-जीवन में परिवर्तित होता दिखाई देता है।

उपन्यास में खड़िया समाज की आर्थिक संरचना में वनोपज एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विश्वसनीय आय स्रोत के रूप में उभरकर सामने आता है। आदिवासी समाज का जीवन जंगलों के साथ सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक रूप से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है, परंतु उपन्यास यह दर्शाता है कि वनोपज उनके आर्थिक जीवन की रीढ़ भी है। फल-फूल, कन्द-मूल, पत्तियाँ, औषधीय जड़ी-बूटियाँ और दतुवन न केवल उनके भोजन का हिस्सा हैं बल्कि बाजार में बेचकर होने वाली आय का आधार भी बनते हैं। उपन्यासकार इस आर्थिक संरचना का मार्मिक चित्रण करते हुए लिखते हैं— "टेना की बहन कनैली जंगल से फल-फूल, कन्द-मूल और दतुवन बेचकर अपने तीनों बच्चों का पालन-पोषण कर रही है।"[6] यह प्रसंग दर्शाता है कि वनोपज उन परिवारों के लिए संकट-निवारक आर्थिक शक्ति है, जो गरीबी और आर्थिक असुरक्षा से जूझते हुए भी जंगल पर आधारित आय-स्रोत के माध्यम से जीवन को संधारित करते हैं।

इस प्रकार 'सोरेङ खोड़ी' में खड़िया आदिवासी समाज की आर्थिक संरचना दोहरे स्वरूप में सामने आती है—एक ओर परंपरागत कृषि-व्यवस्था है, जो सामुदायिक श्रम पर आधारित है, और दूसरी ओर वनोपज है, जो कठिन परिस्थितियों में उनके लिए भरोसेमंद आर्थिक स्तंभ की भूमिका निभाता है। साथ ही, रोजगार की खोज में असम-पंजाब की ओर मजदूरी-आधारित प्रवासन आदिवासी जीवन की बदली हुई सामाजिक-आर्थिक वास्तविकता को संकेतित करता है। कृषि–वन आधारित अर्थव्यवस्था और मजबूरीवश होने वाला श्रमिक प्रवासन—दोनों मिलकर उपन्यास में आदिवासी समाज की संघर्षपूर्ण, परंतु जीवन-धर्मी आर्थिक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यासकार ने खड़िया आदिवासी समाज के जीवन-मूल्यों में निहित 'मदईत'—अर्थात परस्पर सहयोग, सहकारिता और सामुदायिक उत्तरदायित्व—को एक केंद्रीय सामाजिक विशेषता के रूप में प्रस्तुत किया है। आदिवासी समुदायों में 'मदईत' केवल एक अनौपचारिक आर्थिक या सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और नैतिक मूल्य-व्यवस्था है, जो समुदाय के भीतर परस्पर निर्भरता, आत्मीयता और सामाजिक एकजुटता को सुनिश्चित करती है। उपन्यास में कई प्रसंग इस सामुदायिक सहकारिता का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणस्वरूप, जब डेले और खेंदारी का एक बैल मर जाता है, तब उनकी कृषि-प्रक्रिया बाधित होने का संकट खड़ा हो जाता है, क्योंकि एक बैल के सहारे खेती करना संभव नहीं। ऐसी स्थिति में पंच द्वारा दिया गया मात्र एक निर्देश पूरे गाँव को सक्रिय कर देता है और सभी लोग मिलकर उनकी सहायता हेतु एकत्र हो जाते हैं। यह प्रसंग खड़िया समाज में सामूहिक श्रम, साझी जिम्मेदारी और सामूहिक समाधान की परंपरा को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इसी प्रकार, उपन्यास में बोडदो की माँ के गंभीर रूप से बीमार पड़ जाने का प्रसंग भी 'मदईत' की मानवीय संवेदना को उजागर करता है। उसका कोई प्रत्यक्ष सहारा नहीं होता, परंतु ऐसी स्थिति में हाबिल उसे अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की तरह शहर के अस्पताल में ले जाता है। यह घटना बताती है कि मदईत का भाव केवल श्रम-सहयोग तक सीमित नहीं, बल्कि मानवीय करुणा और सामाजिक दायित्व का विस्तार भी है, जहाँ एक सदस्य का संकट पूरे समुदाय के नैतिक हस्तक्षेप का कारण बनता है।

उपन्यास में खड़िया आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना का सर्वोच्च एवं संगठित रूप 'अखिल भारतीय खड़िया महासभा' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह महासभा केवल एक संगठनात्मक ढांचा नहीं, बल्कि खड़िया समाज की सांस्कृतिक स्मृति, ऐतिहासिक चेतना, परंपरागत ज्ञान और सामुदायिक पहचान का प्रतिनिधित्व करती है। उपन्यास में इसके आयोजन का चित्रण अत्यंत व्यापक स्वरूप में मिलता है, जिसमें समाज के विभिन्न वर्ग—बुद्धिजीवी, साहित्यकार, पुरोहित, खड़िया भाषा के संरक्षक एवं अनेक अतिथि—उल्लेखनीय संख्या में उपस्थित रहते हैं। महासभा के माध्यम से उपन्यासकार खड़िया समाज के इतिहास, सांस्कृतिक विशिष्टताओं, सामाजिक निषेधों, पारंपरिक मूल्य-व्यवस्था और धार्मिक परंपराओं को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास में यह स्पष्ट किया गया है कि खड़िया समुदाय स्वभावतः अत्यंत शांतप्रिय, सौम्य और प्रकृति-निष्ठ समाज है, जिसका उद्गम 'मृत सागर' की ओर से माना गया है। महासभा में खड़िया समाज की दस आज्ञाएँ भी प्रस्तुत की जाती हैं, जो समुदाय की सामाजिक अनुशासन व्यवस्था और नैतिक संहिता का आधार हैं। ये आज्ञाएँ केवल धार्मिक निर्देश नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित रखने वाली सांस्कृतिक-सामुदायिक मर्यादाएँ हैं। इनमें—

"1. गाय / बैल की हत्या न करना।

©Copyright 2025 *ADRJ*. All Rights Reserved

2. गाय / बैल का मांस नहीं खाना।
3. जो व्यक्ति गाय / बैल की हत्या या बिक्री करता हो, उसे गाय / बैल न बेचना।
4. गाय / बैल के मृत शरीर का स्पर्श न करना।
5. गाय / बैल के चमड़े का मूल्य न देना।
6. गोशाला प्रवेश की पाबंदी का पालन करना।
7. स्त्री वर्ग द्वारा हल एवं जुएँठ का स्पर्श वर्जित।
8. लोहार के चेपुआ को न छूना।
9. घाव में मक्खी या कीड़ा लगने न देना।
10. एक ही खून एवं एक ही घर में विवाह को व्यभिचार मानना; यह दंडनीय अपराध है|"[7] इतना ही नहीं महासभा के आयोजन में खड़िया समाज के प्रमुख पर्वों—सरहुल, करमा और सोहराइ—का भी विस्तृत परिचय मिलता है। ये पर्व समुदाय के धार्मिक-आध्यात्मिक जीवन, कृषि-चक्र, प्रकृति-पूजा और सामूहिक नृत्य-गीत की परंपरा से जुड़े हैं। सरहुल पर्व के अंतर्गत होने वाली 'लमलम' अर्थात सामूहिक शिकार-प्रथा का चित्रण उपन्यास में अत्यंत जीवंत व सांस्कृतिक गहराई के साथ किया गया है। यह न केवल साहस और परंपरा का प्रतीक है, बल्कि सामुदायिक एकजुटता और पारंपरिक पुरुषार्थ का भी द्योतक है।

खड़िया जनजाति की संगीतप्रियता उनके सामुदायिक जीवन, सांस्कृतिक निरंतरता और भाव-संवेदी अभिव्यक्तियों का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष उपन्यास में देखने को मिलता है। संगीत, नृत्य और अखड़ा-परंपरा इस समाज के सामाजिक ढांचे की धुरी है, जो न केवल मनोरंजन का साधन है बल्कि सामूहिकता, भाव-साझेदारी और सांस्कृतिक एकजुटता की अभिव्यक्ति भी है। उपन्यास में खड़िया समाज का अखड़ा गाँव के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का केंद्रीय स्थल है। यह वह स्थान है जहाँ दिनभर की श्रमसाध्य दिनचर्या के बाद समुदाय एकत्रित होता है और नृत्य, गायन तथा लोकवाद्य-वादन के माध्यम से अपने थकान और तनाव को सामूहिक स्वरूप में उत्सव में बदल देता है। अखड़ा केवल मनोरंजन स्थल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक उत्तराधिकार के हस्तांतरण, सामुदायिक प्रशिक्षण और पीढ़ियों के बीच भावात्मक संवाद का पारंपरिक माध्यम है। उपन्यास का आरम्भ टेना खड़िया की बाँसुरी-वादन से होता है। विशाल चट्टान पर बैठकर संध्या के समय बजाई गई बाँसुरी खड़िया जीवन की प्रकृति-निष्ठ भाव-धारा का प्रतीक है। यहाँ संगीत प्रकृति के साथ सहजीवन को अभिव्यक्त करता है| उपन्यास में वर्णित खड़िया ग्राम्य जीवन का कोई भी उत्सव संगीत के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। माँदर की थाप, नगाड़े की गूँज, सामूहिक गीतों का स्वर संपूर्ण गाँव को उत्सवमय बना देते हैं। ये संगीत-प्रक्रियाएँ समूह के भीतर समूह-संवेग, एकता, उल्लास और आध्यात्मिकता को पुष्ट करती हैं। उपन्यास में संगीत केवल उत्सवधर्मी पक्ष का द्योतक नहीं, बल्कि भावनाओं, स्मृतियों और पीड़ा को व्यक्त करने का भी माध्यम है। पंजाब में मजदूरी करने गया लोंगोय जब गाँव लौटता है, तो उसका गीत प्रवासी मजदूरों की वेदना, श्रम-अन्याय, अकेलेपन और गाँव के प्रति गहरे भावनात्मक संबंध को उजागर करता है। गीत की पंक्तियों—

"नहीं जाऊँगा काम करने छः मसिया,
यहाँ टोली में ही जीवन का रस है।"[8]

—में उसकी मनोदशा का वास्तविक चित्र उभरता है। यह गीत केवल लोंगोय का व्यक्तिगत अनुभव नहीं, बल्कि आदिवासी प्रवासन की साझा पीड़ा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें गाँव का अखड़ा, माँदर की थाप, सामूहिक हँसी-खेल और पहाड़-जंगल की स्मृतियाँ जीवन का वास्तविक "रस" बनकर उभरती हैं।

उपन्यास के अंत में दो घटनाएँ— राहिल की दुर्घटनाजन्य मृत्यु और रायेम के प्रेमी सुनमेर की हत्या, जीवन की अनिश्चितता और समाज के छिपे हुए हिंसक आयामों को सामने लाती है। परंतु उपन्यास 'दुख के अंधकार में डूबे रहने' की कथा नहीं है, बल्कि आगे बढ़ने की मनुष्य-केन्द्रित जिजीविषा को उभारता है। सभी पात्र कठिनाइयों के बाद भी जीवन की ओर लौटते हैं—यही आदिवासी चेतना का मूल तत्व है, जिसमें संघर्ष और उत्सव, पीड़ा और संगीत, मृत्यु और जीवन साथ-साथ चलते हैं।

अनिल वीरेंद्र कुल्लू द्वारा रचित 'सोरेङ खोडी' भाषाशिल्प की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें खड़िया आदिवासी समाज की भाषिक परंपरा और अभिव्यक्ति का सौंदर्य अत्यंत स्वाभाविकता के साथ उभरकर सामने आता है। उपन्यास की भाषा न केवल सरल और सहज है, बल्कि उसमें आदिवासी बोली, लोक-प्रयोग, ध्वन्यात्मकता और संवादों की ऐसी जीवंतता है, जो पाठक को सीधे खड़िया समाज के बीच ले जाकर खड़ा कर देती है। उपन्यास में प्रयुक्त भाषा अत्यंत सहज, संप्रेषणीय और प्रवाहमयी है। लेखक ने कहीं भी जटिल या दुरूह शब्दावली का अनावश्यक प्रयोग नहीं किया है। यही सरलता पाठक को कथानक से जोड़ती है और पात्रों के अनुभवों, भावनाओं तथा संघर्षों को सीधे मन पर प्रभाव डालने योग्य बनाती है।

उपन्यास की सर्वाधिक प्रभावी विशेषता इसकी स्थानीय-भाषिक प्रामाणिकता है। खड़िया समाज के शब्द—जैसे लेरे 'सोन रोने मेमोरी, टोला कराम, बंदोई, आलोङ, भोंइस चुमावन, तपन गोलङ, जाङकोर, लमलम, पोनमोसोर, ठेङ, मदईत आदि न केवल उपन्यास को सांस्कृतिक गहराई प्रदान करते हैं, बल्कि पाठक को आदिवासी जीवनविश्व की वास्तविकता से परिचित कराते हैं। इन शब्दों का प्रयोग कहीं भी

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

कृत्रिम नहीं लगता, बल्कि घटनाओं और पात्रों से स्वाभाविक रूप से जुड़ा हुआ है। साथ ही संस्कृत, तद्भव, अरबी-फारसी और अंग्रेजी शब्दों का मिश्रण कथानक को साहित्यिक ऊँचाई प्रदान करते हैं। यह बहुभाषिकता उपन्यास की भाषा को विविधतापूर्ण तथा युगानुरूप बनाती है।

'सोरेङ खोडी' को संवाद शैली प्रधान उपन्यास कहना उचित होगा। इसके अतिरिक्त पूर्वदिप्ति, भाषण शैली, विश्लेषणात्मक शैली, कथात्मक शैली इन सभी शैलियों का संतुलित एवं कलात्मक उपयोग उपन्यास को प्रभावपूर्ण बनाता है। ध्वन्यात्मक शब्द जैसे चुरुक-चुरुक, फिक-फिक, गुगुच...पण्डू...चू, कों:च-कों:च, तॉक ददंग धिंग ताँग धतिंग..., ददंग ददंग धिंग धतिंग धिंग धतिंग तँग तँग—इनका प्रयोग उपन्यास में दृश्यात्मकता और श्रव्य-रस दोनों को जीवित करता है।

संक्षेप में भाषा-शैली की दृष्टि से 'सोरेङ खोडी' अत्यंत प्रामाणिक, सहज, संवादप्रधान और सांस्कृतिक रूप से संपन्न उपन्यास है। यह उपन्यास भाषा-शिल्प की दृष्टि से आदिवासी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार 'सोरेङ खोडी' केवल एक उपन्यास भर नहीं; यह आदिवासी समाज का समाजशास्त्रीय दस्तावेज, सांस्कृतिक अभिलेख, ऐतिहासिक स्मरण और संवेदना का जीवंत आख्यान है। कुल्लू ने जिस आत्मीयता, नैसर्गिकता और सौंदर्य-बोध के साथ खड़िया जीवन को चित्रित किया है, वह भारतीय आदिवासी साहित्य को नई परंपरा और नई दिशा देता है। यह उपन्यास आदिवासी अस्मिता, सामुदायिकता, संघर्षशीलता, श्रम–सभ्यता और सांस्कृतिक स्थायित्व का अत्यंत सशक्त साहित्यिक प्रमाण है।

संदर्भ संकेत

1) सोरेङ खोडी- अनिल वींरेंद्र कुल्लू, सत्य भारती प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण-2007, पृष्ठ क्रमांक- 151
2) वही, पृष्ठ क्रमांक- 134
3) वही, पृष्ठ क्रमांक- 141
4) वही, पृष्ठ क्रमांक- 156
5) वही, पृष्ठ क्रमांक- 133
6) वही, पृष्ठ क्रमांक- 137
7) वही, पृष्ठ क्रमांक- 192
8) वही, पृष्ठ क्रमांक- 168

©Copyright 2025 *ADRJ*. All Rights Reserved